Purva Mimaansa
A Multi-discipinary Bi-annual Research Journal
(Double Blind Peer Reviewed)

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

अधिकारों की पृष्ठभूमि एवं कर्मचारीवर्ग के अधिकार

डा॰ दलबीर सिंह

संक्षेपिका

रोटी, कपड़ा और मकान–ये तीन मूलभूत आवश्यकतायें तो मनुष्य की रहती ही हैं। संस्कृत साहित्य भयमुक्त परिवेश में सबका विकास चाहते हुए अधिकारों की अवधारणा रखता है जिससे सभी को सम्मानपूर्वक जीवन मिले, विशेषतया कर्मचारी वर्ग को। 'पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः', 'परोपकारः पुण्याय', 'सन्तोष एव पुरूषस्य परं निधानम्' 'मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे' तथा 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' जैसी धारणायें एवं सन्देश किसी का भी अहित अथवा अपमान नहीं करने देगी एवं सभी के अधिकार सुरक्षित रहेंगे। संस्कृत साहित्य के अनुसार कर्मचारियों को समुचित वेतन मिलना चाहिये। आगे भी जैसे जैसे कर्मचारी का कार्यानुभाव बढ़ता जाये उसके वेतन में वृद्धि होती रहनी चाहिये। कर्मचारी को भत्तें के सहित वेतन पूरा मिलता रहे तथा मिलता भी समय पर रहे, विलम्ब से नहीं। पैंशन के संबधं में कहा गया है कि जिस कर्मचारी की सेवा चालीस वर्ष की हो जाये उसे बिना काम कराये अर्थात् सेवा मुक्त रूप में आजीवन आधा वेतन मिलता रहे।

रोटी, कपड़ा और मकान–ये तीन मूलभूत आवश्यकतायें तो मनुष्य की रहती ही हैं। साथ ही उन्हें ज्ञान प्राप्ति तथा योग्यतानुसार उन्नति के समान अवसर भी मिलने होते हैं। भयमुक्त परिवेश भी चाहिये। कुल मिला कर इस प्रकार का सम्मानपूर्वक जीवन यापन आदर्श समाज में ही मिल पायेगा। आदर्श समाज का निर्माण करने के लिये आदर्श मानव बनना पड़ेगा। आदर्श मानव बनने के लिये किसी उपाधि की आवश्यकता नहीं होती, केवल हमें ऋषिओं, मुनिओं, महाकविओं आदि द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलना होता है। उस पथ पर चलते हुए मानव दूसरों के हित में अपने हित को भी पीछे कर सकते हैं। उनके हित के हनन का तो सोचना ही क्या।

उदाहरणार्थ, संस्कृत साहित्य का 'पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः' सन्देश मानवों से यह अपेक्षा रखता है कि वे परस्पर एक दूसरे के उत्थान के लिये आगे आयेंगे। स्वार्थ की भावना को आगे रखकर दूसरों को भुला दिया जाता है परन्तु 'परोपकारः पुण्याय'[2] पाठ को अपेक्षा रहती है कि मानव मानव को कभी नहीं भूलेगा।

तृष्णा, लोलुपता आदि से ग्रस्त मनुष्य दूसरों का हित छीनने से हिचकिचाता नहीं है परन्तु 'सन्तोष एव पुरूषस्य परं निधानम्' जैसी धारणा से अलंकृत मनुष्य से ऐसी अपेक्षा कदापि नहीं की जा सकती। 'मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे'[4] जैसी भावना से यदि दृष्टि ही मित्र भावना वाली रख ली जायेगी तो सब ओर मित्र ही मित्र दिखाई देंगे। हित दबायेंगे किसका –

इसी प्रकार 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'[5] जैसी धारणा किसी का भी अहित

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत पालि एवं प्राकृत विभाग, गुरू नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर।

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

अथवा अपमान नहीं करने देगी क्योंकि व्यक्ति को पता होगा कि दूसरों से जैसा व्यवहार मैं अपने लिये नहीं चाहता वैसा व्यवहार मैंने भी किसी के लिये नहीं करना है।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य भली भान्ति सिखाता है कि मनुष्य जितना अपने सम्मान तथा जीवन को उन्नत एवं सुरक्षित देखना चाहता है उससे कहीं अधिक ध्यान तथा योगदान वह औरों के हित संरक्षण में लगाये। समाज ऐसा बने जिसमें सब के विकास, सब के सम्मान की भावना फलती फूलती रहे। परिवेश सदैव भयमुक्त बना रहे। ऐसे उद्देश्य को सफल बनाने के लिये संस्कृत साहित्य में कई प्रकार के अधिकारों की अवधारणा हुई है। जैसे–

मात्स्य न्याय से बचने अर्थात् कहीं बलवान् निर्बल को खा न जाये। उस का हक न मार ले– ऐसी अव्यवस्था से बचने के लिये राष्ट्र में एक राजा अर्थात् शासक की परिकल्पना की गई।[6] सुव्यवस्था बनाये रखने के लिये राजा ने असामाजिक तत्त्वों, बेईमानों, आततायिओं आदि का दमन करना होता है, अतः उसके हाथ मजबूत करने के लिये उसे दण्ड देने का अधिकार सौंपा गया।[7] अकेले दण्ड के अधिकार से राज्य नहीं चल पाता। राज्य चलाने के लिये राजा को धन भी तो चाहिये।[8] राजकोष में धन आता रहे इस दृष्टि से राजा को षष्ठांशवृत्ति अर्थात् प्रजा की आय का लगभग 17% कर लेने का अधिकार भी दिया गया।

यह भी उल्लेखनीय है कि संस्कृत साहित्य ने राजा को दण्ड तथा कर लगाने का अधिकार तो दिया परन्तु मनमानी करने का अधिकार नहीं दिया। दण्ड के संबंध में संस्कृत साहित्य का राजा को आदेश है कि वह ऐसी दण्ड व्यवस्था बनाये जिसमें पूर्ण न्याय हो अर्थात् पीडित को न्याय मिले। दण्ड अपराधी को मिले, निरपराध को नहीं। अपराधी को भी न्याय मिले इस लिये राज्य में 'यथापराधदण्ड' अर्थात् जितना अपराध उतना दण्ड जैसी नीति रखी जाये।[10] कर अधिकार के संबंध में यह सुनिश्चित किया गया कि प्रजा से लिये गये कर को राजा अपने पर ऋण समझे। जितना लिया है उससे कहीं अधिक लौटाने की बुद्धि रखे।[11] अभिप्राय यह है कि राजा प्रजा से लिये कर से विकास की ऐसी योजनायें लागू करे कि राज्य में सर्वत्र उन्नत परिवेश तो हो ही, सब के लिये काम धन्धे की व्यवस्था भी हो। राईट टु लिव तथा राईट टु वर्क अधिकार की प्रतीति कराने वाले–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।[12]

मन्त्र की काम धन्धा करते हुए सौ वर्ष तक जीने वाली बात तभी पूर्ण रूपेण सार्थक हो पायेगी यदि सब के लिये काम धन्धे के अवसर उपलब्ध होंगे।

काम धन्धा अपना कोई व्यवसाय चला कर भी किया जाता है तथा सरकारी एवं निजी संस्थानों आदि में कर्मचारी के रूप में भी किया जाता है। कर्मचारी वर्ग के अधिकारों की अवधारणा भी संस्कृत साहित्य में मिलती है। संस्कृत साहित्य के अनुसार कर्मचारियों को समुचित वेतन मिलना चाहिये।

वेतन की विभिन्न श्रेणियां मानी गई हैं। जिस वेतन को पाकर कर्मचारी अपने द्वारा अवश्य पोषणीय जनों का भलीभान्ति पालन पोषण सुविधा से कर पाये उस वेतन को मध्यम श्रेणी का वेतन माना गया है। मध्यम श्रेणी से ऊपर के वेतन को श्रेष्ठ वेतन तथा नीचे के वेतन को हीन

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

वेतन कहा गया–

अवश्यपोष्यभरणा भृतिर्मध्या प्रकीर्तिता।
परिपोष्या भृतिः श्रेष्ठा समान्नाच्छादनार्थिका।
भवेदेकस्य भरणं यया सा हीनसंज्ञिका।।[13]

इसी संबंधी निर्देश है कि कर्मचारी को मध्यम श्रेणी का वेतन तो मिलना ही चाहिये जिससे उसे अपने परिवार एवं प्रिय जनों के पालन में कोई कठिनाई न आने पाये–

अवश्यपोष्यवर्गस्य भरणं भृतकाद्भवेत्।
तथा भृतिस्तु संयोज्या यद्योग्या भृतकाय वै।।[14]

आगे भी जैसे जैसे कर्मचारी का कार्यानुभाव बढ़ता जाये उसके वेतन में वृद्धि होती रहनी चाहिये–

यथा यथा तु गुणवान् भृतकस्तद्भृतिस्तथा।
संयोज्या तु प्रयत्नेन नृपेणात्महिताय वै।।[15]

इस श्लोक में स्वामी के लिये आत्महिताय पद रखा गया है जिस से स्पष्ट है कि कर्मचारी का कार्यानुभव बढ़ते बढ़ते वेतन बढ़ाते रहने में संस्था का भी हित है क्योंकि अपने को ठगा ठगा समझने वाला कर्मचारी पूरा मन लगा कर काम नहीं कर पायेगा।

यह भी सुनिश्चित करने के लिये कहा गया है कर्मचारी को वेतन पूरा मिलता रहे तथा मिलता भी समय पर रहे, विलम्ब से नहीं–

न कुर्याद् भृतिलोपं तु तथा भृतिविलम्बनम्।।[16]

वेतन के साथ साथ भत्ते देने का भी निर्देश है तथा बिना किसी विलम्ब के देने के लिये कहा गया है

क्वचिद् बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्।
सम्प्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे।।[17]

कर्मचारी को हीन वेतन अर्थात् कम वेतन पर रखने की निन्दा की गई है। इस संबंध में सावधान करते हुए कहा गया है कि कर्मचारी को कम वेतन देना संस्था के लिये एक शत्रु पैदा करने के समान है क्योंकि ऐसे कर्मचारी की संस्था के प्रति निष्ठा नहीं बन पायेगी। वह संस्था की गोपनीयता प्रतिद्वन्द्वियों को देकर संस्था को हानि पहुंचा सकता है। दो नम्बर की कमाई करने लग सकता है

ये भृत्या हीनभृतकाः शत्रवस्ते स्वयंकृताः।
परस्य साधकास्ते तु छिद्रकोशप्रजाहराः।।[18]

वर्ष में एक बार कर्मचारियों को बोनस देने की संस्तुति भी हुई है–

अष्टमांशं पारितोष्यं दद्याद् भृत्याय वत्सरे।
कार्याष्टमांशं वा दद्यात्कार्यं द्रागधिकं कृतम्।।[19]

पैंशन के संबंध में कहा गया है कि जिस कर्मचारी की सेवा चालीस वर्ष की हो जाये उसे बिना काम कराये अर्थात् सेवा मुक्त रूप में आजीवन आधा वेतन मिलता रहे

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

चत्वारिंशत्समा नीताः सेवया येन वै नृपः।
ततः सेवां बिना तस्मै भृत्यर्धं कल्पयेत्सदा।।[20]

यदि सेवा निभाते हुए कर्मचारी की मृत्यु हो जाये तो उसका वेतन उसको परिवार को मिलता रहे। उस का पुत्र यदि जवान हो तो उसे नियुक्ति भी दी जा सकती है

स्वामिकार्ये विनष्टो यस्तत्पुत्रस्तद् भृतिं वहेत्।
यावद्बालोऽन्यथा पुत्रगुणान्दृष्ट्वा भृतिं वहेत्।।[21]

कर्मचारी ने अपना घर परिवार भी देखना होता है। अतः उसके लिये नियमित अवकाश तथा उत्सव आदि अवसरों पर छुट्टी देने के लिये भी कहा गया है–

भृत्यानां गृहकृत्यार्थं दिवा यामं समुत्सृजेत्।[22]
तेभ्यः कार्यं कारयीत ह्युत्सवाद्यैर्विना नृपः।[23]

इस प्रकार स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य भयमुक्त परिवेश में सबका विकास चाहते हुए अधिकारों की अवधारणा रखता है जिससे सभी को सम्मानपूर्वक जीवन मिले, विशेषतया कर्मचारी वर्ग को। कर्मचारिओं को संस्कृत साहित्य इस रूप में देखना चाहता है–

भृतिदानेन सन्तुष्टा मानेन परिवर्धिताः।[24]

अर्थात् कर्मचारी को सन्तोषजनक वेतन तथा मान सम्मान मिलना ही चाहिये।

[1]ऋग्वेद 6.75.14
[2]पंचतन्त्र 3.101
[3]पंचतन्त्र 2.159
[4]यजुर्वेद 36.18
[5]पंचतन्त्र 3.102
[6]अराजकं हि नो राष्ट्रं विनाशं समवाप्नुयात्।
वाल्मीकिरामायण 2.67.8
मात्स्यन्यायाभिभूताः प्रजा मनुं वैवस्वतं राजानं चक्रिरे।
कौटिलीय अर्थशास्त्र 1.8.12
[7]चतुवर्णाश्रमो लोको राज्ञा दण्डेन पालितः।
स्वधर्मकर्माभिरतो वर्तते स्वेषु वेश्मसु।।
कौटिलीय अर्थशास्त्र 1.1.3
[8]कोषपूर्वाः सर्वारम्भाः।
कौटिलीय अर्थशास्त्र 2.24.8
[9]शेषः सदैवाहितभूमिभारः षष्ठांशवृत्तेरपि धर्म एषः।।
अभिज्ञानशाकुन्तल 5.4
[10]यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम्।।
रघुवंश 1.6

Vol. 9 No. 1-2, March-Sep. 2018
ISSN : 0976-0237
UGC Approved Journal No. 40903

[11]प्रजानामेवभूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत् ।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादतो हि रसं रविः ।।
रघुवंश 1.18

[12]ईशोपनिषद् 2
[13]शुक्रनीतिसार 2.380
[14]शुक्रनीतिसार 2.382
[15]शुक्रनीतिसार 2.381
[16]शुक्रनीतिसार 2.379
[17]वाल्मीकिरामायण 2.100.32
[18]शुक्रनीतिसार 2.383
[19]शुक्रनीतिसार 2.395
[20]शुक्रनीतिसार 2.393
[21]शुक्रनीतिसार 2.396
[22]शुक्रनीतिसार 2.387
[23]शुक्रनीतिसार 2.388
[24]शुक्रनीतिसार 2.399